ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 552-555

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

यादों में रची बसी मन्नू भंडारी

प्रियेश कुमार तिवारी

शोध अध्येता– हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

Received- 05.08.2020,Revised- 09.08.2020, Accepted-13.08.2020 E-mail: - peetaambrask@gmail.com

सारांश :*मन्नू भंडारी को हिंदी की दुनिया कई तरह से याद करती है–'आपकी बंटी' और 'महाभोज' जैसे उपन्यासों की लेखक के तौर पर, 'रजनीगंधा' जैसी फिल्म और 'रजनी' जैसे धारावाहिक के लिए और राजेन्द्र यादव जैसे लेखक की पत्नी के रूप में भी। लेकिन इन सब में एक बात साझा है–मन्नू भंडारी के व्यक्तित्व की उस दृढ़ता की याद, जो कभी उन्हें अकेला भी करती रही, कभी उदास भी, लेकिन जिसने उनके लेखन और जीवन की सरहदें तय कीं–या उनका विस्तार किया। यह दृढ़ता, यह निश्चयात्मकता लेकिन उनमें किसी इलहाम की तरह नहीं आती थी, यह उनके भीतर आत्मा के दिखाए गये किसी रास्ते की तरह नहीं मिलती थी, इसे वह बहुत ऊहापोह के बाद अर्जित करती थीं–विवेक, और संवेदना के बहुत सारे संघर्षों से गुजरकर उन्हें वह सच मिलता था जिसका मोल वे समझती थीं, और इसके बाद जीवन हो या रचना, लेखक हो या किरदार इस सच को थामे ही किसी न किसी ठिकाने लगते थे. यह मूल्य अर्जित हो जाने के बाद वे किसी की नहीं सुनती थीं. लेकिन तब भी जैसे एक ऊहापोह उनके भीतर सक्रिय रहता था जिसकी वजह से इस दृढ़ता में न कभी प्रगल्भता दिखी और न कभी वाचाल–वृत्ति। जीवन हो रचना –वे खामोशी से अपनी बात कहती और अपने रास्ते पर चलती मिलती रहीं.*

कुंजीभूत शब्द–हिंदी की दुनिया, उपन्यासों, रजनीगंधा, धारावाहिक, व्यक्तित्व, दृढ़ता, उदास, सरहदें तय)

अपनी आत्मकथा किताब 'एक कहानी यह भी' में वे विस्तार से ऐसे कई प्रसंगों की चर्चा करती हैं जहां पिता की असहमति के बावजूद वे अपने रास्ते चलती रहीं। राजेन्द्र यादव से विवाह भी उनका ऐसा ही फैसला था और उस विवाह के बाद जीवन के टेढ़े–मेढ़े रास्तों में उन्होंने बहुत धीरज और संयम के साथ अपना रास्ता चुना और उस पर खामोशी से चलती रहीं।

शायद उनके व्यक्तित्व का गुण उनकी रचनात्मक में भी रिस आता है। इसके उदाहरण उनके समूचे कृतित्व में खोजे जा सकते हैं, लेकिन इसकी सबसे अच्छी मिसाल उनका उपन्यास 'आपका बंटी' ही है. हिंदी में इसे बंटी की कहानी के तौर पर पढ़ने का चलन है–एक ऐसे बच्चे के वेधक अंतर्द्वंद्व के तौर पर, जिसे मां–पिता के तलाक ने बुरी तरह तोड़ डाला है और जिसके लिए न पिता का घर बचा है और न मां का शायद इसलिए भी कि मन्नू भंडारी खुद चाहती थीं कि इसे बंटी की कहानी के रूप में पढ़ा जाए–उन्होंने उपन्यास की भूमिका में लिखा भी है कि उनके भीतर एक बंटी की छटपटाहट ने उन्हें यह उपन्यास लिखने को मजबूर किया। मगर यह उपन्यास जितना बंटी का है उतना ही शकुन का भी। बल्कि इसके जो सबसे मार्मिक पृष्ठ हैं वे बंटी के नहीं, शकुन के ब्योरों से ही बनते हैं। दरअसल, 'आपकी बंटी' में शकुन क अंतर्द्वंद्व को पढ़ते हुए ही मन्नू भंडारी के समूचे कथा–विन्यास की बहुत सारी सीमाओं–संभावनाओं का भी सुराग मिलता है। यह भी समझ में आता है कि वह कौन सी चीज है जो उन्हें समकालीन भी बनाए रखती है और विचारणीय भी। अपने पति के साथ शकुन के टकराव पर शकुन के भीतर चल रही व्यथा को मन्नू भंडारी इन शब्दों में रखती हैं–

'शुरू के दिनों में ही एक ही गलत निर्णय ले डालने का एहसास दोनों के मन में बहुत साफ होकर उभर आया था, जिस पर हर दिन और हर घटना ने केवल सान चढ़ाई थी. समझौते का प्रयत्न भी दोनों में एक अंडरस्टेंडिंग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था, वरन एक–दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से तर्कों और बहसों में दिन बीतते थे और ठंडी लाशों की तरह, लेटे–लेटे, दूसरे को दुखी, बेचैन और छटपटाते हुए देखने की आकांक्षा में रातें भीतर ही भीतर चलने वाली एक अजीब–सी लड़ाई थी वह भी, जिसमें दम साधकर दोनों ने हर दिन प्रतीक्षा की थी कि कब सामने वाले की सांस उखड़ जाती है और वह घुटने टेक देता है, जिससे कि फिर वह बड़ी उदारता और क्षमशीलता के साथ सारे गुनाह माफ करके उसे स्वीकार कर ले, उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को निरे एक शून्य में बदलकर.'

एक बड़े अनुच्छेद का यह छोटा–सा हिस्सा आपसी संबंधों की जटिलता को जिस तरह पकड़ता है, वह मार्मिक भी है और विवाह नाम की संस्था के भीतर दो व्यक्तियों के टकराव को पहचानने का एक अहम सूत्र भी. अपने इस रूप में मन्नू भंडारी अन्यतम हैं. दांपत्य के टकरव पर लिखी सारी कहानियां याद कर लें तो भी तत्काल संबंधों की ऐसी रणनीतिक त्रासदी याद नहीं आती 'साथ रहने की यंत्रणा' और 'अलगाव के विकट त्रास' को मन्नू भंडारी ने बहुत कम शब्दों में यहां बहुत गहराई से पकड़ा है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

यह शिकायत कोई नहीं करता, लेकिन कहीं न कहीं हिंदी आलोचना या विचार की मुख्यधारा में मन्नू भंडारी को लेकर जैसे यह ख्याल प्रचलित है कि वे मध्यवर्गीय कामकाजी स्त्रियों की कहानियां लिखती हैं, विद्रोही नायिकाओं की नहीं, आजाद–ख्याल लड़कियों की नहीं–जैसी कहानियां उनके दौर की या उनसे कुछ बरस आगे–पीछे की कई लेखिकाओं के पास मौजूद हैं. मन्नू भंडारी की स्त्रियां इस्मत चुगताई की स्त्रियों की तरह दुस्साहसी नहीं दिखतीं, अमृता प्रीतम की लड़कियों की तरह रोमानी नजर नहीं आतीं, कृष्णा सोबती की नायिकाओं की तरह मुखर नहीं मिलती।

लेकिन शकुन क्या इनमें से किसी से कम दुस्साहसी या आजाद है ? उसके पहले पति की शिकायत यही है कि वह 'डॉमिनेटिंग' है, समझौते नहीं करती। उपन्यास में जब शकुन के दूसरे विवाह के समय भावुकता में कुछ कहती है तो शकुन वहां भी उसे रोकने में समय नहीं लेती। वह कहती है–'देखो फूफी, मैं तुम्हारी बहुत इज्जत करती हूं। अपनी मां से भी ज्यादा..... पर मां को भी मैंने कभी अपनी बातों के बीच में बोलने हीं दिया। मुझे याद नहीं, वे कभी बोली हों ..... यह अधिकार तो मैं किसी को दे ही नहीं सकती!'

यह असली शकुन है–वह नायिका जिसे बिना किसी शोर–शराब के लेखिका ने खड़ा किया और फिर पति, बेटे और दूसरे विवाह के ऐसे जाल में उलझा दिया जिससे कोई निकलकर बाहर नहीं आ सका। 'आपका बंटी' यों ही मन्नू भंडारी का 'मास्टरपीस' नहीं है। वह बस इसीलिए अपील नहीं करता कि उसमें मां–पिता के तलाक के बाद अकेले पड़ गये एक बच्चे कहानी है। उसमें वैचारिक टकराव और अंतर्वेदना के कई स्तर हैं जो पाठक को झिंझोड़तें हैं, सोचने पर मजबूर करते हैं–काफी कुछ अनकहा भी है जिसे पूरी सहजता से मन्नू भंडारी ने रच दिया है। अपने दूसरे पिता और अपनी मां को निर्वस्त्र या अस्त व्यस्त कपड़ों में देखकर बंटी के भीतर जिस तरह के भाव पैदा होते हैं, उनका चित्रण आसान काम नहीं था. मन्नू भंडारी अगर जरा भी पारंपरिक या जड़ सोच से संचालित–प्रेरित होतीं तो उन्होंने बड़ी सुविधा के साथ यह अंष हटा दिया होता, लेकिन वे जैसे एक सच के सभी पहलुओं पर उंगली रखने पर अडिग हैं। उनकी सूक्ष्म नजर यह भी देख पाती है कि कैसे बंटी के भीतर उसके पहले पति अजय के पूर्वग्रह चले आए हैं, कैसे बंटी उसे अपने पिता की ओर से देख रहा है। दरअसल, ध्यान से पढ़े तो 'आपका बंटी, सिर्फ मां–बाप पके अहम और टकराव के बीच पिसते एक बच्चे की कहानी नहीं है, वह भारतीय परिवारों स्त्री विरूद्ध झुकी उस तुला का भी चित्रण है जिसमें पिता परिवार का स्वाभाविक मुखिया बन जाता है। पुरूष का दूसरा विवाह किसी को आपत्तिजनक नहीं लगता, लेकिन स्त्री का दूसरा विवाह बेटे को ही खलने लगता है. उपन्यास पढ़ते हुए एकबारगी खयाल आता है कि लेखिका ने जान–बुझकर कहानी को ऐसी नाटकीयता दी है जिसमें बंटी लगातार अकेला होता जाए. आखिर डॉ. जोशी के बेटे–बेटी को नई मां कबुल है, लेकिन बंटी को नया पिता मंजूर नहीं बेशक, इसकी एक वजह यह भी है कि जोत और अमि की मां नहीं रहा–कहना मुश्किल है कि अगर वह जीवित होतीं और उनका भी डॉ. जोशी से सिर्फ तलाक हुआ होता तो उन बच्चों को अपनी मां का ख्याल सताता या नहीं. लेकिन इसमें संदेह नहीं कि पुरूष होने के नाते जो सुविधा अजय और डॉ. जोशी के पास है, वह अपने बहुत ठोस व्यक्तित्व के बावजूद शकुन के पास नहीं। इस लिहाज से यह दांपत्य के असंतुलन की भी कहानी है।

मन्नू भंडारी का महत्व लेकिन इसी बात में है कि दांपत्य के इस असंतुलन को वे कामकाजी स्त्री के नजरिए से देख पाती हैं। उनकी इन कामकाजी स्त्रियों में भावुकता है, कभी–कभी अपनी स्थिति को देखकर पैदा हुई कातरता भी है, लेकिन इसके पार जाने की बेचैनी और तड़प लगभग हमेषा है–या इससे पीछे हटने की कसक भी।

इसी तरह से देखें तो मन्नू भंडारी उस दौर की शकुनों की कथा लिख रही थीं–और इस तरह सोचें तो बीसवीं सदी की दूसरी–तीसरी दहाइयों में पैदा हुई भारतीय लेखिकाओं के बीच उनकी एक खास जगह बनती है. यह दौर बहुत सारी बड़ी लेखिकाओं का है. बीसवीं सदी के बिल्कुल पहले दशक में पैदा हुई महादेवी वर्मा, आशापूर्णा देवी या सुभद्रा कुमारी चौहान को छोड़ भी दे तो हम पाते हैं कि 1915 में इस्मत चुगताई पैदा होती हैं, 1919 में अमृता प्रीतम, 1925 में कृष्णा सोबती, 1926 में महाश्वेता देवी, 1927 में कुर्रतुलैन हैदर और 1930–31 में मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा। यह बड़ी सूची यह बताने के लिए गिनाई है कि पहली नजर में नहीं दिखता कि आजादी के आस–पास और उसके बाद भारतीय कथा आकाश स्त्री लेखन के कितने सितारों से जगमगाा रहा था. हिंदी में नई कहानी आंदोलन के नाम पर राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, धर्मवीर भारती या भीष्म साहनी–या इनके बाद ज्ञानरंजन, अमरकांत आदि को याद करने का जो रिवाज है, उसमें यह बात सुविधापूर्वक भुला दी जाती है कि इस दौर में कई महत्वपूर्ण स्त्री लेखकों ने भी अपनी कलम का लोहा मनवाया. कम से कम कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा ऐसी त्रिमूर्ति की तरह नजर आती हैं जिन्होंने कथा–लेखन में पुरूष वर्चस्व के किले ध्वस्त किए। मन्नू भंडारी पर लौटें. निश्चय ही उनका मनोविन्यास नई कहानी की मध्यवर्गीयता में ही निहित था, लेकिन वे इसके भीतर लगातार दो काम करती रहीं–एक तो इस मध्यमवर्गीय जीवन में संबंधों का जो पाखंड है, उसे उधेड़ती रहीं और

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

दूसरा, उस स्त्री को षक्ति देती रहीं जो इस माहौल से निकलकर घर–बाहर–दतर जा रही थी–उसे चुनाव की सुविधा भी। इसी मोड़ पर उनकी उस दूसरी प्रसिद्ध कहानी 'यही सच है' का ख्याल आता है जिस पर 'रजनीगंधा' जैसी प्यारी और कामयाब फिल्म बनी. इस फिल्म की नायिका भी कशमकश में है. उसके सामने दो प्रेमियों का बीच चुनाव का द्वंद्व आता है। ऐसा लग रहा है कि मौजूदा प्रेमी को छोड़कर वह पुराने प्रेमी का वरण करेगी, लेकिन बिल्कुल अंत में दीपा का चुनाव संजय के पक्ष में जाता है। याद नहीं आता कि स्त्री के स्वतंत्र चुनाव की ऐसी मामूली लगने वाली गैर–मामूली कहानी हिंदी में पहले किसी ने लिखी भी या नहीं। दरअसल, यहां फिर से समझा में आता है कि मन्नू भंडारी का लेखन जितना सरल दिखता है, वह उतना सरल नहीं है, जितना पारंपरिक दिखता है, उससे कहीं ज्यादा आधुनिक है, संयुक्त परिवारों और घरों से निकलती संस्कारों की बेड़ियों से लिपटी उनकी नायिकाएं अंततः अपनी तरह से ये बेड़ियां तोड़ डालती हैं। इस मोड़ पर पता चलता है कि मन्नू भंडारी कई मायनों में अपने समकालीनों या पूर्वकालीनों से कहीं ज्यादा आधुनिक हैं। उनकी स्त्रियां पढ़ी–लिखी हैं, घर से बाहर प्रेमी और पति खोज रही हैं, मार्यादा और षील की परवाह करती हैं, लेकिन उसमें बंधी हुई नहीं हैं. जब वे बांधी जाती हैं, तब भी इसकी कसक इनके भीतर बनी रहती है. 'एक प्लेट सैलाब' संग्रह की पहली कहानी 'नई नौकरी' इसका सुदर उदाहरण है. कुंदन की नई नौकरी लगी है–किसी विदेशी कंपनी में–बहुत पैसे वाली. अचानक उसे बड़ा घर लेना पड़ता है, नए ढंग से उसे सजाना पड़ता है, बाहर से आने वाले मेहमानों के लिए पार्टियां करनी पड़ती हैं और इसके लिए उसकी प्राध्यापक पत्नी अपनी नौकरी की कुर्बानी देती हैं. वह पाती है कि उसक जीवन बिल्कुल ठहर गया है। पहली तारीख को अपना पूरा वेतन उसके हाथ में रखते हुए कुंदन जब उसे बताता है कि महरी और ड्राइवर के कितने पैसे बने हैं, तब अचानक उसे एहसास होता है कि वह भी उसकी नौकर सरीखी हो गई है, हालांकि कहीं मन्नू भंडारी ने यह लिखा नहीं है, लेकिन कहानी के हालात और उसका शीर्षक इसको लेकर कोई भ्रम रहने नहीं देते।

दरअसल, एक तरह से मन्नू भंडारी की नई कहानियां 'आपका बंटी' की शकुन की कथा का ही विस्तार हैं या उनका रूपांतर। भले महज इत्तिफाक हो कि 'नई नौकरी'कहानी मे दंपती के बच्चे का नाम बंटी है, लेकिन यह ख्याल आए बिना नहीं रहता कि कहीं अवचेतन में कामकाजी स्त्री की आजादी वाली वही दुविधा लेखिका के मन में अब भी घूम तो नहीं रही है? इसी तरह से 'बंद दराजों का साथ' भी 'आपका बंटी' का कुछ बदल हुआ संक्षिप्त संस्करण लगता है. यहां पति बिपिन की बेवफाई से टूटी नायिका अपने बेटे के साथ उससे अलग होने का फैसला लेती है। यहां उसका बेटा असित आराम से हॉस्टल जाता है और वह दिलीप नाम के एक–दूसरे शख्स को जीवन साथी बनाती है, लेकिन किसी मोड़ पर दिलीप असित के हॉस्टल का भारी फीस का जिक्र भर छेड़ता है कि नायिका को अपनी नौकरी छोड़ देने का मलाल सताता है, लेकिन यह ज्यादा व्यावहारिक नायिका है. वह बिपिन से असित की पढ़ाई का आधा खर्च लेती है जिसका उसने वादा किया था. रिश्तों के द्वंद्व की, उनमें ठिठके रहने की, अपने भीतर गुम रहने वाली नायिकाओं की, धोखा खाकर संभलने की कोशिश करने वाली स्त्रियों की ऐसी ढेर सारी कहानियां मन्नू भंडारी को पास हैं. ऐसा नहीं कि सबके सब 'आपका बंटी' की पुनरावृत्तियां या शकुन के पूर्व या भावी जीवन की अन्य कथाएं हैं. लेकिन इन सबको पढ़ते हुए यह ख्याल भी आता है कि संबंधों की जिस टूटन को मन्नू भंडारी ने तब पहचाना था, वह आज कहीं ज्यादा प्रगाढ़ रूप में हमारे बीच मौजूद हैं. तलाक पहले से बढ़े हैं–और बेशक, इनके साथ लड़कियों की आजादी का मसला भी जुड़ा है–लेकिन इन्हीं के साथ–साथ संबंधों के टूटने की, बेवफाई की, धोखाधड़ी और पाखंड की मिसालें भी बढ़ी हैं, बल्कि संबंधों के बीच जो ठिठकी हुई सी नम चुप्पी मन्नू भंडारी के किरदारों में असानी से पहचानी जाती है, वह हमारे समय में सूखती –सूखती एक तरह की यांत्रिकता में बदल गई है–पहले चुप्पी भी बोलती थी, अब बोलने में भी खालीपन महसूस किया जा सकता है।

इस तरह देखें तो पाते हैं कि हमारी लेखिका दरअसल रिश्तों के ईमान की पहरेदार लेखिका हैं। चाहे वह जीवन की निजी कचोट से निकला हो, या अपने चारों तरफ पसरे संसार के बहुत सारे लोग आंख चुराते रहते हैं, लेकिन इन सबको मन्नू भंडारी ने अपना विशय बनाया है और कहीं वे स्त्रियों को शीलवती, आदर्श या पतिपरायण होने की शिक्षा देती नजर नहीं आतीं। वे पाखंड को पाखंड की तरह लिखती हैं, चोट को चोट की तरह, चीख को चीख की तरह, चुप्पी को चुप्पी की तरह–और यह सब हमारे भीतर पसरता जाता है. 'स्त्री–सुबोधिनी, स्त्रियों के नाम लिखा गया उनका पत्र बेहद दिलचस्प है जो बहुत सारे 'मर्द लेखकों' को पानी–पानी नहीं, पसीना–पसीना छोड़ जाता है.

दरअसल मन्नू भंडारी के लिए जीवन सबसे अहम है–साहित्य, कविता, कला–इन सबसे अहम इस लिहाज से उनकी एक और कहानी 'कलाकार' याद आती है। हॉस्टल के एक कमरे में बरसों साथ रहने वाली दो सहेलियों में एक चित्रकार है और दूसरी सामाजिक कार्यकर्ता दोनों का साथ जिस दिन छूटना है, उस दि एक भिखारिन की मौत हो जाती है, जिसके दो बच्चे उसके पास खड़े हैं. चित्रकार दौड़ी–दौड़ी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

जाती है, उनका बहुत सजीव चित्र बना लेती है। इस चित्र के लिए उसे बिल्कुल अंतर्राष्ट्रीय ख्याति हासिल होती है। बरसों बाद लेकिन जब वह अपनी समाजसेवी मित्र से मिलती है तो पाती है कि उस चित्र में उसने जिन बच्चो की तस्वीरें बनाई थीं, वे अब उसके पास पल रहे हैं और बड़े हो गए हैं।

संभव है, बहुत सारे कला–मर्मज्ञों को यह काहनी कला के प्रति अतिरिक्त निश्ठुर जान पड़े, या उन्हें मन्नू भंडारी की कला–चेतना पर सवाल उठाने की इच्छा हो, लेकिन मन्नू भंडारी ऐसी ही हैं–जीवन उनके लिए हमेशा कला से मूल्यवान है। उनकी कहानियां अध्ययन से नहीं अनुभव से निकली हैं, शिल्प से नहीं, सरोकार से निकली हैं, उनमें कहीं–कहीं बिखराव दिखता है लेकिन फिर भी ऐसा प्रबल जुड़ाव दिखता है कि अंततः उन पर उठाए जाने वाले प्रश्न स्थगित हो जात हैं. इसी जुड़ाव की वजह से कई बार वे उन क्षेत्रों में भी दाखिल होती हैं जो उनके सामान्य संवेदन के विषय नहीं हैं। उनका उपन्यास 'महाभोज' इसका एक उदाहरण है। ठोस राजनीति की जमीन पर रचा गया यह उपन्यास दलितों के साथ हो रहे छल और उत्पीड़न की कहानी उस समय कह रहा है जब अस्मितावादी साहित्य लेखन का उदय नहीं हुआ था और दलित मुख्यधारा के लेखन से कुछ उसी तरह बाहर थे जैसे संभ्रांत बस्तियों से कहीं मैंने पढ़ा था कि मन्नू भंडारी को बेलछी कांड से यह उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली थी। सच जो भी हो, इसे लिखने का जोखिम उन्होंने तभी उठाया होगा, जब उन्हें लगा होगा कि यह कथा कही जानी जरूरी है।

यह दोहराने का ज्यादा मतलब नहीं है कि बाद के दशकों में हिंदी की जो कथा–पीढ़ियां बालिग हुई, उनकी प्रेरणा के स्रोतों में मन्नू भंडारी भी एक रहीं. जीवन और लेखन दोनों की चुनौतियों का उन्होंने सहजत से सामना किया और हमारे लिए एक बड़ी विरासत छोड़ गई। इस विरासत में निहित मांग और मोल यही है कि हम जीवन को पूरी ईमानदारी से देखें और रचें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मन्नू भंडारी : ''महाभोज'' सन् 1979.
2. जगदीश चन्द्र : धरती धन न अपना।
3. मोहन नैमिशराय : अपने–अपने पिंजरे (भाग–एक 1995 ई0 भाग–दो सन् 2000).
4. ओम प्रकाश बाल्मिकी : जूठन सन् 1997.
5. सूजन पाल चौहान : तिरस्कृत सन् 2002.
6. डॉ. तुलसी राम : मुर्दहिया सन् 2010.
7. राहुल सांकृत्यायन : वोल्गा से गंगा तक।
8. उग्रः फागुन के दिन चार।
9. रांगेय राघव : कब तक पुकारूं।
10. फणीश्वर नाथ ''रेणु'' : मैला आँचल, परती परिकथा, पल्टू बाबू रोड।
11. अमृतलाल नागर : सतरंज के मोहरे, अमृत और विष।
12. उदयशंकर भट्ट : लोक–परलोक।

*****